Toppersnotes®
Unleash the topper in you

SET

State Eligibility Test

राज्य पात्रता परीक्षा

भूगोल

पेपर – 2 II भाग – 3

आर्थिक गतिविधि और विकास का भूगोल, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राजनीतिक भूगोल, भौगोलिक चिंतन

SIERRA INNOVATIONS

S.No.	Chapter Name	Page No.
	इकाई – 6	
1	आर्थिक गतिविधियाँ	1
2	प्राथमिक गतिविधियों को प्रभावित करने वाले कारक	2
3	द्वितीयक गतिविधियों को प्रभावित करने वाले कारक	5
4	प्राकृतिक संसाधनो का वितरण (समस्याएँ, प्रबंधन)	6
5	ऊर्जा संकट	8
6	कृषि (प्रकार, पद्धतियाँ)	12
7	भूमि क्षमता का वर्गीकरण (वॉन ट्यूमेन मॉडल)	15
8	शस्य या फसल प्रतिरूप	19
9	शस्य संयोजन विधि क्षेत्र का निरूपण एवं विविधीकरण	21
10	कृषि उत्पादकता	23
11	उद्योग (प्रकार, स्थान निर्धारक के कारक)	26
12	उद्योगो के स्थान निर्धारण के सिद्धान्त (वेबर, लॉश, डी.एम. स्मिथ हूबर)	31
13	विश्व के औद्योगिक प्रदेश	37
14	अल्प विकसित देशो में विनिर्माण क्षेत्र पर वैश्वीकरण का प्रभाव	42
15	पर्यटन और स्थानिक संरचना	42
16	परिवहन और स्थानिक संरचना	44
17	स्थानीय पारस्परिक अन्योन्य क्रिया के सिद्धान्त एवं मॉडल	46
18	सम्पर्कता या सम्बद्धता	47
19	अभिगम्यता	50
20	स्थानीय प्रवाह एवं गुरूत्वाकर्षण मॉडल	55
21	व्यापार	57
22	उदारीकरण, वैश्वीकरण और विश्व व्यापार	65
23	प्रादेशिक विकास (प्रकार, प्रारूप विज्ञान प्रदेश)	70
24	विश्व प्रादेशिक विविधता एवं प्रादेशिक विविधता के सिद्धान्त	72
25	भारत में प्रादेशिक विकास और सामाजिक आंदोलन	79
26	भारत में प्रादेशिक नियोजन	80

इकाई – 7		
1	सांस्कृतिक एवं सामाजिक भूगोल	87
2	सामाजिक संरचना एवं प्रक्रम	93
3	सामाजिक कल्याण एवं जीवन की गुणवत्ता	95
4	भारत में सामाजिक समूहो का स्थानीय वितरण	99
5	पर्यावरण एवं मानव स्वास्थय	102
6	भारत में स्वास्थ्य सुरक्षा की योजना एवं नीति	105
7	राजनीति भूगोल की परिसीमाएँ एवं सरहद की संकल्पना, प्रकृति और विकास	108
8	संघवाद का भूगोल	110
9	जलवायु परिवर्तन की भूराजनीति	113
10	विश्व संसाधनों की भूराजनीति	115
11	प्रादेशिक सहयोग के संगठन	118
12	विश्व संसाधनो की नव–राजनीति	123

इकाई – 8		
1	भौगोलिक ज्ञान में ग्रीक, रोमन, अरब, चाइनीज एवं भारतीयों का योगदान	125
	• ग्रीक का योगदान	125
	• रोम का योगदान	126
	• अरब का योगदान	127
	• चीन का योगदान	134
	• भारत का योगदान	137
2	भूगोलवेत्ताओं का योगदान	139
3	भौगोलिक चिंतन पर डार्विन का प्रभाव	143
4	भूगोल में कार्टोग्राफी	145
5	प्रमुख भौगोलिक परम्पराएँ	148
6	भौगोलिक अध्ययन में द्वैतवाद	150
7	प्रत्यक्षवाद	159
8	व्यवहारवाद	161
9	संरचनावाद	163

Unit 6 - आर्थिक भूगोल
(Economic Geography)

आर्थिक भूगोल के अन्तर्गत उन सभी भौगोलिक परिस्थितियों का वर्णन होता है, जो वस्तुओं के उत्पादन, परिवहन तथा विनिमय को प्रभावित करती है ।

आर्थिक गतिविधियाँ (Economic Activities)

आर्थिक भूगोल के अन्तर्गत आर्थिक गतिविधियाँ मानव की आर्थिक क्रियाओं की क्षेत्रीय भिन्नताओं तथा उनके स्थानिक वितरणों और सम्बन्धों का अध्ययन करती है । आर्थिक भूगोल मानव भूगोल की एक प्रमुख शाखा के रूप में स्थापित हुई जो मानवीय आर्थिक कार्य-कलापों का भूपृष्ठ पर विभिन्नता तथा तत्सम्बन्धी भू-दृश्यों की विवेचना से सम्बन्धित है । पृथ्वी के धरातल पर विभिन्न प्रदेशों में निवास करने वाले मानव वर्गों की आर्थिक क्रियाएँ भिन्न-भिन्न होती है और उनसे विभिन्न आर्थिक क्रियाएँ जन्म लेती है । मानव वर्ग तथा भौगोलिक वातावरण के सहयोग से विभिन्न दैनिक के समाधान हेतु प्रयास किए जाते है । आर्थिक भूगोल का विकास सर्वप्रथम वाणिज्यिक भूगोल के रूप में स्थापित हुआ था । आर्थिक भूगोल के अन्तर्गत आर्थिक गतिविधियों का विकास वाणिज्यिक भूगोल के रूप में 1862 ई. में प्रकाशित पुस्तक ज्योग्राफी डेस वेल्थलैण्ड्स से माना जाता है । इस पुस्तक के रचयिता 'एण्ड्री' थे । चिशोल्म के अनुसार, Þआर्थिक भूगोल के अन्तर्गत आर्थिक गतिविधियाँ उन सब भौगोलिक परिस्थितियों का वर्णन होता है, जो वस्तुओं की उत्पत्ति, उनके विनिमय एवं स्थानान्तरण पर प्रभाव डालती है ।

आर्थिक गतिविधियों के अन्तर्गत मानव की आर्थिक क्रियाएँ

आर्थिक भूगोल मानव की समस्त आर्थिक क्रियाओं व जीविकोपार्जन के साधनों का अध्ययन करता है । मानव की उत्पादन सम्बन्धी आर्थिक क्रियाओं को ट्रूमैन एवं अलेक्जेण्डर द्वारा निम्न श्रेणियों में बाँटा गया है

प्राथमिक गतिविधियाँ इनके अन्तर्गत प्रकृतिप्रदत्त संसाधनों का सीधा उपयोग होता है । कृषि कार्य में मिट्टी का सीधा उपयोग फसलें उगाने के लिए किया जाता है । इस प्रकार जल क्षेत्रों में मछली पकडना, खानों से कोयला, लोहा आदि खनिज निकालना, वनों से लकडियाँ काटना अथवा पशुओं से ऊन, चमडा, बाल, खालें, हड्डियाँ आदि प्राप्त करना प्राथमिक उत्पादन क्रियाएँ है । इनसे सम्बन्धित उद्योगों को प्राथमिक आर्थिक गतिविधियों की श्रेणी में या प्राथमिक गतिविधियाँ कहा जाता है । इस समूह में कार्यरत् व्यक्ति लाल कॉलर श्रमिक कहलाते है ।

द्वितीयक गतिविधियाँ इनके अन्तर्गत प्रकृति प्रदत्त संसाधनों का सीधा उपयोग नहीं किया जाता बल्कि उनको साफ, परिष्कृत अथवा परिवर्तित कर उपयोग के योग्य बनाया जाता है । इससे उनके मूल्य में वृद्धि होती है । जैसे लोहे को गलाकर इस्पात के यन्त्र अथवा अन्य वस्तुएँ बनाना, गेहूँ से आटा या मैदा बनाना, कपास और ऊन से कपडा बनाना, लकडी से फर्नीचर, कागज आदि बनाना । इन वस्तुओं को तैयार करने वाले उद्योगों को गौण उद्योग कहा जाता है । इस समूह के व्यक्ति नीला कॉलर श्रमिक कहे जाते है ।

तृतीयक गतिविधियां इनके अन्तर्गत ने सभी क्रियाएँ आती हैं जो प्राथमिक एवं द्वितीयक उत्पादन की वस्तुओं को उपभोक्ता उद्योगपतियो तक पहुँचाने से सम्बन्धित होती हैं । इस प्रकार की विद्याओं के अन्तर्गत वस्तुओं का स्थानान्तरण (Transportation) संचार और संवादसाहन (Communication), वितरण (Dintribution) एवं संस्थाओं और व्यक्तियों की सेवाएं तथा निनिगम सम्मिलित की जाती हैं । इस समूह के संलग्न व्यक्ति गुलाबी कॉलरश्रमिक कहलाते हैं ।

चतुर्थक गतिविधियाँ चतुर्थक गतिविधियों विशेष प्रकार के सेवा कार्य हैं जिनका सम्बन्ध व्यावसायिक तथा प्रशासकीय सेवाओं से है । इन सेवाओं के अन्तर्गत वित्तीय स्वास्थ्य सेवा कार्य, सूचना प्रक्रमण (Information Proconatog), शिक्षाण राजकीय सेवाएं तथा मनोरंजन क्रिया सम्मिलित हैं । सभी चतुर्थक गतिविधियों कार्यालय भवन या विद्यालय, थियेटर, होटल तथा चिकित्सा संस्थान द्वारा प्रदत्त विशेषीकृत वातावरण (Spocinlined Environment) में होती हैं । इस समूह के व्यक्तियों सफेद फॉलर श्रमिक (White Collar Worker) कहते हैं ।

पंचम गतिविधियाँ अन्य गतिविधियों की तुलना में पंचम गतिविधियाँ बहुत प्रतिबन्धित आकार में है । इसके अन्तर्गत महत्वपूर्ण योजना तथा समस्या निदानमूलक सेवाएं प्रदान करने वाले शोध वैज्ञानिक विधि अधिकारी, वित्तीय सलाहकार व्यावसायिक परामर्शदाता (Professional Consultants) इस समूह के अन्तर्गत आते हैं। इस समूह में कार्यरत् व्यक्तियों को सुनहरी कॉलर श्रमिक (Gold Collar Worker) कहते हैं ।

प्राथमिक गतिविधियों की व्यवस्था को प्रभावित करने वाले स्थानीय कारक

प्राथमिक गतिविधियों की व्यवस्था को अनेक बातें प्रभावित करती हैं । इनके अन्तर्गत भौतिक, आर्थिक एवं सामाजिक कारक मुख्य माने जाते हैं, जिनका वर्णन निम्न प्रकार से है

भौतिक कारक

इसके अन्तर्गत प्राथमिक आर्थिक गतिविधियों पर प्रभाव डालने वाले घटक भूमि की प्रकृति, मिट्टी के गुण, तापमान तथा वर्षा की मात्रा है । इनमें से अनेक घटकों में मानव ने प्रयास से परिवर्तन किए हैं । जिन भू-भागों में जल का अभाव पाया जाता है । वहाँ कृषि के लिए सिंचाई के साधन उपलब्ध किए गए हैं, जहाँ मिट्टी की उर्वरा शक्ति समाप्त हो गई है, वहाँ खाद्य आदि देकर उसे पुनरू उर्वर किया गया है, किन्तु जिन क्षेत्रों में ऐसा सम्भव नहीं हो पाया है वहाँ उसने कृषि के स्वरूप को ही बदल दिया है जैसे अत्यन्त शीत प्रदेशों में शीघ्र पकने वाली फसलों का आविष्कार किया गया है । अनेक क्षेत्रों में रोगों और कीडों से मुक्त बीजों का प्रयोग कर उत्तम फसलें प्राप्त की जाती है । उसी प्रकार जल क्षेत्रों में मछली पकडना, खानों से कोयला, लोहा आदि खनिज निकालना, वनों से लकडियाँ काटना अथवा पशुओं से ऊन, चमडा बाल खालें, हड्डियाँ आदि को प्राप्त करने की क्रियाओं को भौतिक घटक प्रत्यक्षतः या परोक्षतः प्रभावित हैं । प्राथमिक आर्थिक क्रियाओं को प्रभावित करने वाले भौतिक घटक के अन्तर्गत निम्न दशाएँ आती हैं ।

- जलवायविक दशाएँ प्राथमिक आर्थिक गतिविधियों पर सर्वाधिक प्रभाव तापमान और वर्षा का पडता है । जैसे कृषि कार्य में पौधों को बढने के लिए एक निश्चित तापमान की आवश्यकता होती है, उससे कम तापमान पर अंकुर निकलना सम्भव नहीं होता ।

- साधारणतः जिन भू भागों में ग्रीष्मकालीन औसत तापमान 50°C से मिलता है वहाँ खेती नहीं की जा सकती अर्थात् किसी प्रदेश विशेष में कौन-सी फसलें उत्पन्न की जाती हैं, साल में कितनी फसलें ली जा सक है और कृषि कार्य का क्या स्वरूप होता है, यह सब जलवायु पर होना ।
- जलवायु ही मनुष्य को साधन सम्पन्न बनाती है । खनिज सम्पत्ति का समुचित विदोहन जलवायु की अनुकूलता पर निर्भर होता है । प्रतिकूल जलवायु प्रदेशों में भूगर्भ में छिपी विभिन्न खनिज सम्पदा का पता लगाना कठिन कार्य होता है ।
- उदाहरणार्थ, टुण्डा प्रदेश वर्षभर हिमाच्छादित रहते हैं परिणामस्वरूप ख सम्पदा के स्रोत ढूंढ निकालना एक कठिन कार्य है । ठीक इसी भूमध्यरेखीय प्रदेशों में सघन वनों एवं दलदली भूमि के कारण खनिज सम्पदा का ठीक से सर्वेक्षण ही नहीं हो पाया है ।
- प्रतिकूल जलवायु वाले प्रदेशों में स्थित खनिज भण्डारो का दोहन मानव द्वारा सभी किया जाता है, जबकि वे अत्यधिक मूल्यवान हों, जैसे दक्षिणी अफ्रीका के कालाहारी मरुस्थल से हीरे और सोना प्राप्त किए जाते हैं । ध्रुवीय प्रदेश में ग्रीनलैण्ड के तटवर्ती क्षेत्र में क्रीसोलाइट की उपलब्धि का सर्वेक्षण किया जा चुका है, परन्तु कठोर एवं दुःखदायी जलवायु के कारण उचित विदोहन और भावी अन्वेषण असम्भव सा है ।
- भूमि की प्रकृति खेती उन्हीं भू-भागों में की जाती है जहाँ हल चलाने के लिए समतल भूमि मिलती है । ऐसे भागों में ही यन्त्रों का उपयोग किया जा सकता है तथा फसलों को ढोने की सुविधाएँ मिलती है । वस्तुतः नदी घाटियों में, पहाडी ढालों पर उपजाऊ समतल भागों में समुद्रतटीय मैदानों में ही कृषि की जाती है । जहाँ पर जनसंख्या का भार अधिक होता है, तो खेती पहाडों के ढालों पर भूमि को छोटे-छोटे टुकडों या सीढियों के आकार में काटकर की जाती है । ऐसे पहाडी ढाल हजारों मीटर की ऊँचाई तक पाए जाते है । अधिक से अधिक 45° के ढालों पर सफलतापूर्वक खेती की जा सकती है ।
- उपजाऊ मिट्टी फसलों के लिए उपजाऊ मिट्टी का मिलना भी आवश्यक है । कम उपजाऊ भागों में मिट्टी की उर्वरा शक्ति बढाने के लिए प्राणिज अथवा रासायनिक खादों का उपयोग बढाया जाता है । विश्व में खेती की दृष्टि से काँप, कछार या दोमट मिट्टियाँ सबसे महत्वपूर्ण मानी गई हैं । बलुई, नमकीन या दलदली मिट्टी कृषि के लिए उपयुक्त नहीं होती ।
- इसी कारण मरुस्थलों में अथवा नदियों में दलदली भागों में कृषि क्रिया का अभाव पाया जाता है । इसी प्रकार अधिक वर्षा वाले भागों में भी भूमि की उर्वरा शक्ति धरातल में रिस जाने या बहकर चले जाने से खेती करना कठिन और व्ययसाध्य होता है ।

आर्थिक कारक

इन घटकों में बाजारों की निकटता, यातायात के साधनों की उन्नति, श्रमिकों की उपलब्धता, पूँजी और सरकारी नीति का स्थान मुख्य है ।

- बाजार की निकटता कोई क्षेत्र उपभोग के केन्द्रों से कितनी दूर है, यह बात भी खेती एवं खनन को प्रभावित करती है । साग, सब्जियाँ, शीघ्र नष्ट होने वाले फल, मत्स्य उद्योग सामान्यतः घनी जनसंख्या के क्षेत्रों के निकट ही स्थापित किए जाते हैं, किन्तु खाद्यान्न और उद्योगों के लिए कच्चा माल दूर स्थित ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित किए जाते हैं । उदाहरण के लिए, फ्रांस और ब्रिटेनी क्षेत्र इंग्लैण्ड के लिए, सब्जियों और फ्लोरिडा का दक्षिण-पूर्वी भाग संयुक्त राज्य अमेरिका के उत्तर-पूर्वी

नगरों के लिए किया और फल पैदा करते हैं । ग्रेट ब्रिटेन, जापान और इटली कपास की प्राप्ति भारत, पाकिस्तान और सूडान से करते हैं । कच्चा ऊन ऑस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड अर्जेण्टाइना, उरुग्वे और पैराग्वे से प्राप्त किया जाता है ।

- जहाँ भेड़ पालन के लिए उपयुक्त जलवायु सम्बन्धी दशाएँ उपलब्ध यातायात के साधन व्यापारिक ढंग से कृषि तभी सम्भव है जबकि कृषि उत्पादन क्षेत्रों का सम्बन्ध उपभोग के क्षेत्रों में हो शीत भण्डारों की प्रगति हो जाने से हजारो किमी दूर पैदा किए गए अण्डे, दूध मक्खन, सब्जियाँ, मास, फल आदि शीघ्रता के साथ उपभोग केन्द्रों को पहुंचाए जा सकते हैं । बतायातको प्रगति होने से ही क्षेत्र विशेषों मे फसलों का विशिष्टीकरण सम्भव हो सका है । भूमध्यसागरीय प्रदेशों में रसदार तथा सूखे फल, ऑस्ट्रेलिया में मक्खन तथा दूध और कनाडा एवं संयुक्त राज्य में फलों का उत्पादन इसके प्रमुख उदाहरण है ।
- श्रमिक पूर्ति कृषि करने के लिए पर्याप्त मात्रा में निपुण और सस्ते श्रमिको की उपलब्धि आवश्यक है श्रमिकों की अधिकता के कारण ही दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों में चावल और चाय की खेती तथा ओसीनिया के द्वीपों में रबा और नारियल की खेती की जाती है, किन्तु जहाँ मानव श्रम अधिक महंगा होता है वहाँ यन्त्रों के द्वारा खेती की जाती है । विशेषतः रूस, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया और संयुक्त राज्य अमेरिका में ।
- पूँजी की उपलब्धता पूँजी की उपलब्धि भी कृषि के लिए आवश्यक तत्व है पूँजी से ही उत्तम बीज, खाद और वैज्ञानिक तरीको से उपयोग सम्भव है । मशीनों का प्रयोग, सिंचाई के साधनों का विकास और उत्पादित वस्तुओं को बाजारों तक लाने और उन्हें आवश्यकता पडने तक संग्राहकों में एकत्रित करने के लिए भी पूँजी की आवश्यकता पडती है ।
- राज्य की नीति किसी देश की सरकार की कृषि एवं खनन नीति भी कृषि क्षेत्र एवं खनन क्षेत्र को घटाने बढाने में सहायक होती है । भारत सरकार के समक्ष इसकी बढती जनसंख्या के लिए खाद्यान्न प्राप्त करने की समस्या के कारण पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि को प्राथमिकता दी गई । श्री टेलर के अनुसार, जब नई दुनिया के खाद्यान्नों ने यूरोपीय बाजार को पार दिया तो विवशतरू इंग्लैण्ड की सरकार को कृषि के स्थान पर उद्योगों को विकसित करने की नीति को अपनाना पडा । फ्रांस और जर्मनी ने इस समस्या का समाधान संरक्षण कर लगाकर किया । डेनमार्क ने स्वतन्त्र व्यापार ही अपनाया और विदेशों से प्राप्त सस्ते खाद्यान्नो पर ही अपने छोटे-छोटे खेतो मे दुग्ध उद्योग को अपनाया ।ष संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा में भी जब अधिक गेहूँ के उत्पादन के कारण तथा ब्राजील में कहवा के कारण विश्व के बाजारों में माँग की अपेक्षा पूर्ति अधिक हुई तो मूल्य गिर गए इसलिए इन देशो ने अपनी करोडों टन फसल समुद्र के गर्भ में विलीन कर दी अथवा उसे जला डाला । यही स्थिति संयुक्त राज्य अमेरिका में नारंगियों के अधिक उत्पादन हो जाने पर होती है ।

सामाजिक कारक

इसके अन्तर्गत ये घटक सम्मिलित किए जाते हैं मानव की भोजन अभिरुचि एवं अन्य कारणा मानव की भोजन रुचि विभिन्न देशों और जलवायु प्रदेशों में मनुष्य की भोजन रुचि भिन्न-भिन्न पाई जाती है । मानसूनी देशों में चावल और मछली तथा दाले शीतोष्ण प्रदेशों में दूध, मक्खन और रोटी, फल तरकारियों और शराब, आदि अधिक काम में ली जाती है । फलतः यहाँ

इन्हीं वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है । चीन में तो चावल भोजन का मुख्य अनाज है, जबकि भारत में दक्षिण के पठार के निवासियों का मुख्य खाद्यान्न ज्वार बाजार, सोरघम और उत्तरी भारत का गेहूँ है । फ्रांसीसी कृषक जहाँ भी भूमि मिल जाती है वहाँ अन्य अनाजों की अपेक्षा गेहूँ ही बोना पसन्द करते हैं । भूमध्यसागरीय प्रदेशों में अंगूरो की अधिकता के कारण ही शराब पीने का रिवाज प्रचलित हुआ है । चीन तथा तिब्बत में बौद्ध धर्मावलम्बियों द्वारा मांस खाना वर्जित है । अतरू वहाँ मछलियाँ अधिक खाई जाती है

अन्य कारण आधुनिक कृषि और खनन प्रक्रिया को व्यापारिक चक्रों तथा युद्धों आदि का भय रहता है । अतः अन्य कारणों के अन्तर्गत प्राथमिक क्रिया उतनी ही प्रभावित होती है जितनी कि भौतिक, आर्थिक और सामाजिक घटक से प्रभावित होती है ।

द्वितीयक गतिविधियों की व्यवस्था को प्रभावित करने वाले स्थानीय कारक

द्वितीयक आर्थिक गतिविधियों के अन्तर्गत वे व्यवसाय हैं जिन्हें प्राथमिक व्यवसायों द्वारा उपलब्ध पदार्थों का प्रसंस्करण करके विद्वान् उन्हें अधिक विकसित खनन तथा विशेषीकृत कृषि को भी इसी में शामिल करते हैं । लौह-अयस्क को पिंग आयरन में बदलना, कपास से सूती वस्त्र तथा गन्ने से शक्कर का निर्माण द्वितीयक आर्थिक गतिविधियों का एक उदाहरण है ।

द्वितीयक आर्थिक गतिविधियों को प्रभावित करने वाले प्रमुख स्थानिक कारक निम्न हैं मजदूर श्रम उत्पादन का एक अनिवार्य तत्व है । किसी भी उद्योग में श्रमिकों की अनिवार्यता आवश्यक होती है । सभी उत्पादन कार्यों के लिए क्षमताशील श्रमिकों की आवश्यकता होती है, परन्तु उनकी संख्या भिन्न-भिन्न उद्योगों में उद्योग की विशेषता उत्पादन के पैमाने तथा श्रम एवं शक्ति के अनुपात के अनुसार अलग-अलग होती है । यदि कोई विशेष क्षेत्र किसी विशिष्ट उद्योग के लिए प्रख्यात है तो कारखाने उस स्थान के समीप ही स्थापित किए जाते हैं जैसे लंकाशायर प्रदेश पीढ़ियों के कुशल बुनकरों के लिए प्रसिद्ध है । अतः जब उद्योग को बडे पैमाने चालू किया गया तो लंकाशायर क्षेत्र के चुनाव में वहाँ का कुशल श्रमिक सर्वाधिक प्रभावशाली तत्व रहा है ।

उचित जलवायु उद्योगों की स्थापना को प्रभावित करने वाले तत्वों में उत्तम जलवायु भी एक प्रभावशाली अवस्था है । क्योकि जलवायु पर मनुष्य का स्वास्थ्य निर्भर करता है । श्रमिकों का स्वास्थ्य उत्पादन में वृद्धि करता है । अतः श्रमिकों की पूर्ति ऐसे स्थानों पर अधिक रहती है जहाँ की जलवायु अच्छी हो । कुछ उद्योगों को विशिष्ट प्रकार की जलवायु चाहिए । अतः ऐसे कारखाने उसी प्रकार की जलवायु में ही स्थापित किए जाते हैं । उदाहरणार्थ, सूती वस्त्र उद्योग के लिए नम जलवायु अनुकूल होती है । अतः यह उद्योग भारत में अहमदाबाद, मुम्बई, वडोदरा, सूरत, आदि नम जलवायु के क्षेत्रों में स्थापित किए गए हैं ।

पूँजी उत्पादन की क्रिया में पूँजी का बडा महत्व है । छोटे-बडे उद्योगों में पूँजी आवश्यक है । कच्ची सामग्री, श्रम, शक्ति के साधन, बाजार, परिवहन के साधन आदि सभी की व्यवस्था तथा संचालन करने में पूँजी नितान्त आवश्यक है । पूँजी की मात्रा में उत्पादन के पैमाने के अनुसार अन्तर मिलता है ।

मृदा यदि मृदा को कृषि उत्पादन के लिए ठीक ढंग से प्रयोग किया जाए, तो यह एक असमाप्य संसाधन ही है । मृदा से मानव हजारों वर्षों से कृषि के माध्यम से फसले प्राप्त करता आया है, परन्तु पिछले वर्षों में विश्व के अनेक क्षेत्रों में मृदा का अतिशोषण किया गया है, जिससे मृदा हास तथा मृदा अपरदन की समस्या गम्भीर हो गई है । इस समस्या को खाद्य के प्रयोग तथा शस्यावर्तन की प्रक्रिया से हल किया

जा सकता है । मृदा तब तक ही असमाप्य संसाधन है जब तक इसकी उपजाऊ शक्ति बनी हुई है । मनुष्य संसाधनों का स्वयं एक बहुत बडा उत्पादक है । वास्तव में मनुष्य के सहयोग एवं प्रयास के बिना किसी संसाधन का विकास नहीं हो सकता । आदिकाल से ही मनुष्य संसाधनों का विकास करता आया है और जब तक सृष्टि रहेगी तब तक मानव संसाधनों का विकास करता रहेगा और स्वयं एक महत्वपूर्ण असमाप्य संसाधन के रूप में कार्य करता रहेगा

अनव्यकरणीय अथवा समाप्य संसाधन

ये ऐसे संसाधन हैं जिनका एक बार प्रयोग होने के बाद पुनः पूर्ति नहीं हो सकती है । भूगर्भ से प्राप्त होने वाले लगभग सभी खनिज समाप्य संसाधन हैं । जब एक बार इन खनिजों को भूगर्भ में से निकाल लिया जाए, तो पुनः इनकी पूर्ति नहीं हो सकती । कोयला, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस, लौह अयस्क, ताँबा, बॉक्साइट, यूरेनियम, थोरियम, गन्धक आदि समाप्य संसाधनों के उदाहरण हैं । निरन्तर खनन क्रिया से खनिज समाप्त हो जाते हैं और खाने खाली हो जाती हैं इसलिए खनन व्यवसाय को लुटेरा व्यवसाय कहा जाता है । भू-गर्भिक क्रियाओं द्वारा खनिजों की पूर्ति होने में लाखों करोडों वर्ष लग जाते हैं और इस लम्बी अवधि का खनन क्रिया से कोई तालमेल नहीं है । इस प्रकार सभी एक निश्चित मात्रा में उपलब्ध हैं और समय बीतने पर उनकी मात्रा में कमी आती है ।

जिन खनिजों का शक्ति के संसाधनों के रूप में प्रयोग किया जाता है, उनमें कोयला तथा पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस का निर्माण हुआ है । इनके बनने में लाखों वर्षों का समय लगा है । यदि इन संसाधनों का प्रयोग शक्ति उत्पादन के लिए उसी गति से किया गया जिस गति से आज संसार के विभिन्न देश कर रहे हैं, तो ये संसाधन शीघ्र ही समाप्त हो जाएँगे । यदि अनुमानित गति से पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस का प्रयोग होता रहा तो संसार के सभी पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस के भण्डार वर्ष 2070 तक समाप्त हो जाएँगे । संसाधन कुछ ही शताब्दियों में समाप्त हो जाएँगे । यूरेनियम तथा थोरियम अभी तक पर्याप्त मात्रा में बनाए जाते हैं, परन्तु जिस गति से आधुनिक युग में विभिन्न कार्यक्रमों के लिए तेजी से इनका उपयोग होने लगा है उसे देखते हुए यह कहा जा सकता है कि ये संसाधन भी हमारा साथ अधिक देर तक नहीं देंगे ।

प्राकृतिक संसाधनों का वितरण

प्राकृतिक संसाधन पृथ्वी पर असमान रूप से विपरीत हैं । विश्व विभिन्न क्षेत्र विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक संसाधनों से समृद्ध है, तो अनेक क्षेत्रों में प्राकृतिक संसाधनों का अभाव पाया जाता है । विभिन्न प्रकार के संसाधनों का वितरण निम्नलिखित है

- विश्व के कुल कोयला भण्डार का 50: एशिया में लगभग 33% उत्तरी अमेरिका में तथा शेष का अधिकांश भाग यूरोप में स्थित है, जबकि दक्षिणी अमेरिका एवं अफ्रीका में कोयला का अभाव पाया जाता है ।
- विश्व के कुल पेट्रोलियम भण्डार लगभग 60% पश्चिमी एशिया या मध्य पूर्व के खाडी तटीय प्रदेशों में पाए जाते हैं । चीन, इण्डोनेशिया, म्यांमार, भारत में पेट्रोलियम के छोटे भण्डार पाए जाते हैं ।

- विश्व के कुल प्राकृतिक गैस के भण्डारों में 40% संयुक्त राज्य अमेरिका में, 23% मध्य पूर्व में तथा 11% पूर्व सोवियत संघ में पाया जाता है । भण्डार का अधिकांश भाग कनाडा, यूरोप तथा वेनेजुएला में है । मैक्सिको, दक्षिण अमेरिका, पाकिस्तान, चीन, इण्डोनेशिया, भारत, बांग्लादेश एवं ऑस्ट्रेलिया में लघु भण्डार पाया जाता है ।
- विषुवत् रेखा के 15° अक्षांश के मध्य स्थित अफ्रीका में विश्व के कुल विभव जलशक्ति का 40% विद्यमान है, जबकि उत्तरी अफ्रीका तथा दक्षिण-पश्चिम अफ्रीका के मरुस्थलीय प्रदेशों में जलशक्ति विभव काफी कम है ।
- सभी महाद्वीपों में थोडा-बहुत लौह-अयस्क का भण्डार पाया जाता है । विश्व के कुल लौह-अयस्क के भण्डारों का 90% दस देशों पूर्व सोवियत संघ, भारत, ब्राजील, संयुक्त राज्य अमेरिका, फ्रांस, कनाडा, चीन, स्वीडन, वेनेजुएला एवं ऑस्ट्रेलिया में पाया जाता है ।
- जार्जिया, यूक्रेन, रूस, ताजिकिस्तान तथा कजाकिस्तान में मैंगनीज का विशाल भण्डार पाया जाता है । इसके अतिरिक्त चीन, भारत, ब्राजील, घाना, दक्षिण अफ्रीका में भी मैंगनीज का भण्डार पाया जाता है
- ताँबा का भण्डार लगभग सभी महाद्वीपों-दक्षिणी अमेरिका, उत्तरी अमेरिका, एशिया, यूरोप एवं अफ्रीका में पाया जाता है । इसका उत्खनन लगभग 40 देशों द्वारा किया जाता है ।
- बॉक्साइड का भण्डार लगभग सभी महाद्वीपों में पाया जाता है, लेकिन ऑस्ट्रेलिया महाद्वीप में बॉक्साइड का भण्डार सबसे अधिक है । विश्व में अभ्रक का सबसे अधिक भण्डार भारत में पाया जाता है । इसके अतिरिक्त पूर्व सोवियत संघ, ब्राजील, कनाडा, दक्षिणी पूर्वी अफ्रीका तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में अभ्रक का भण्डार पाया जाता है ।

प्राकृतिक संसाधन एवं सम्बन्धित समस्याएँ

प्राकृतिक संसाधनों की अत्यधिक आर्थिक दोहन से संसाधनों की उपलब्धता की समस्या के साथ ही संसाधनों के मात्रात्मक एवं गुणात्मक ह्रास की समस्या भी उत्पन्न हो गई है । इससे सम्बन्धित समस्याएँ निम्नलिखित है

- भूमि संसाधन का अवनयन एवं कृषि उत्पादों में कमी ।
- जल संसाधनों की उपलब्धता में कमी की समस्या का सामना करना पड रहा है ।
- अधिक खाद्यान्न उत्पादन के लिए भूमि की उत्पादकता में वृद्धि एवं सिंचित क्षेत्रों में विस्तार की आवश्यकता है, लेकिन दूसरी ओर सिंचित भूमि में जल प्लावन तथा लवणीयता की समस्या से उर्वर भूमि कम हो रही है ।
- ईंधन आपूर्ति के प्रयासों का प्रभाव खाद्य आपूर्ति पर भी पडता है । संसाधनों की उपलब्धता बढाना ही दूसरे रूप में संसाधन संकट का रूप ले रही है ।
- विभिन्न सिंचाई परियोजनाओं के विकास के लिए भी बडे पैमाने पर वनावरण की कमी की गई, जिससे वनों की उपलब्धता की समस्या उत्पन्न हो गई है ।
- वन, जल, खनिज, खाद्य, ऊर्जा तथा भूमि संसाधनों के विभिन्न आर्थिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अतिदोहन किया गया । परिणामस्वरूप इनकी उपलब्धता में कमी आई तथा इस कमी ने समस्या का रूप ले लिया है ।

प्राकृतिक संसाधन प्रबन्धन

यदि प्राकृतिक संसाधनों का अन्धाधुन्ध दोहन इसी प्रकार जारी रहा । तो मानव की प्रगति तथा उसके जीवन स्तर को बनाए रखना सम्भव नहीं होगा । जैसा कि पहले बताया गया है, संसाधन संरक्षण का अर्थ दीर्घकाल तक उत्पादन जारी रखने के लिए उनका विवेकपूर्ण प्रयोग करना है । इसके लिए प्राकृतिक नियोजन सबसे आवश्यक है । संसाधनों के नियोजन के लिए निम्नलिखित बिन्दु विचारणीय है ।

- किसी क्षेत्र, प्रदेश या देश को प्राथमिक इकाई मानकर उसके संसाधन आधार का आकलन करना चाहिए । इस उद्देश्य से सभी प्रमाणित तथा सम्भावित संसाधनों की मात्रा, गुणवत्ता तथा विशेषताओं का मूल्यांकन करना चाहिए
- निश्चित मात्रा में उपलब्ध संसाधनों या क्षयशील एवं अनवीकरणीय संसाधनों का दोहन वैज्ञानिक विधि से केवल अनिवार्य उद्देश्यों के लिए किया जाना चाहिए । संसाधनों को इस प्रकार विकसित करने का प्रयास करना चाहिए
- जिससे उनकी उत्पादकता में वृद्धि हो । वर्तमान समय में कम उपयोगी माने जाने वाले संसाधनों को व्यर्थ नहीं करना चाहिए । भविष्य में उन्नत प्राविधिकी की सहायता से उन्हें विकसित करना सम्भव हो सकेगा । सीमित मात्रा में उपलब्ध विरल संसाधनों की उपलब्धता बनाए रखने के लिए उनके प्रतिस्थापन ढूँढना आवश्यक है ।
- जैसे-जैसे जनसंख्या की वृद्धि से आर्थिक आवश्यकताएँ बढ रही है वैसे-वैसे वैज्ञानिक तथा प्राविधिक विकास से वैकल्पिक संसाधनों की खोज हो रही है । सभी संसाधनों के स्टॉक की वार्षिक वस्तु सूची बनानी चाहिए, जिससे जनसंख्या तथा संसाधनों के बदलते हुए तथा गत्यात्मक सम्बन्ध को समझा जा सके ।
- संसाधन का सन्तुलित तथा बहुउद्देशीय उप प्रयोग किया जाना चाहिए, जिससे न्यूनतम उत्पादन से अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके ।
- संसाधन सन्तुलित रूप से वितरित नहीं है इसलिए कुछ क्षेत्रों में उनका अति दोहन किया जा रहा है इससे जीवन स्तर में असन्तुलन पैदा होता है जो समाज में असन्तोष का कारण बनता है । सन्तुलित प्रादेशिक विकास के लिए संसाधनों का सन्तुलित प्रयोग करना आवश्यक है ।
- किसी देश के प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के नियोजन के लिए यह आवश्यक है कि उसके नागरिक प्रशिक्षित तथा संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग में शिक्षित हों । उनके बौद्धिक काल के लिए उन्हें सभी सुविधाएँ उपलब्ध करानी चाहिए । संसाधनों के संरक्षण के लिए प्रभावी कानून बनाने चाहिए तथा उन कानूनों के लागू करने तथा पालन को सुनिश्चित करना चाहिए ।

ऊर्जा संकट (Energy Crisis)

ऊर्जा आर्थिक विकास का आधार है । कोई भी देश तब तक उन्नति नहीं कर सकता जब तक उसके पास ऊर्जा के पर्याप्त संसाधन न हों । मानव प्राचीन काल से ही ऊर्जा का प्रयोग कर रहा पहले जनसंख्या कम थी और मानव की आवश्यकताएँ सीमित थीं, परन्तु समय बीतने के साथ जनसंख्या में वृद्धि हुई और मानव आवश्यकताएँ भी बढने लगीं । 18वीं शताब्दी के अन्त तथा 19वीं शताब्दी के आरम्भ में इंग्लैण्ड के अन्दर औद्योगिक क्रान्ति आई जिसका प्रभाव शीघ्र ही विश्व के अन्य क्षेत्रों में फैल गया । परिणामस्वरूप विश्व के विभिन्न भागों में औद्योगिक विकास होने लगा और ऊर्जा की माँग बढने लगी । औद्योगीकरण के साथ-साथ नगरीकरण तथा परिवहन

के साधनों में वृद्धि हुई तथा ऊर्जा की माँग के विभिन्न प्रकार के ऊर्जा स्रोतों का प्रयोग किया गया है, जिन्हें दो मुख्य वर्गो नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत एवं अनवीकरणीय ऊर्जा स्रोत में बाँटा जाता है । चूँकि हमारी निर्भरता मुख्यतरू अनवीकरणीय ऊर्जा स्रोत है । अतः ऊर्जा संकट हो गया ।

ऊर्जा संकट के कारण

आधुनिक युग में आर्थिक उन्नति तेजी से हो रही है और ऊर्जा की माँग में अभूतपूर्व वृद्धि हो रही है । अधिकांश क्षेत्रों में ऊर्जा की माँग उसकी आपूर्ति से कहीं अधिक है । और विश्व भर में ऊर्जा संकट पैदा हो गया है । ऊर्जा संकट के लिए उत्तरदायी कुछ महत्वपूर्ण कारण निम्नलिखित है

- भाप के इंजन के आविष्कार से कोयले की माँग बढने लगी और 19वीं शताब्दी में विश्व की 90% ऊर्जा कोयले से ही प्राप्त होती थी, परन्तु अब कोयले के बहुत से भण्डार समाप्त हो गए है और पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस, जलविद्युत तथा परमाणु ऊर्जा का प्रयोग अधिक होने लगा है । इसके परिणामस्वरूप कोयले का सापेक्षिक महत्व कम हो गया है और अब यह विश्व की केवल 40% ऊर्जा ही प्रदान करता है ।
- जिन क्षेत्रों में कोयले का बडे पैमाने पर प्रयोग हुआ है वहाँ पर कोयले के भण्डार लगभग समाप्त हो चुके है या समाप्त होने वाले है । उनमें संयुक्त राज्य अमेरिका का अप्लेशियन क्षेत्र, ग्रेट ब्रिटेन के अधिकांश कोयला क्षेत्र, यूरोपीय महाद्वीप के रूर, सार, से क्सोनी क्षेत्र, डोनेट्स बेसिन, कुजनेट्स बेसिन, कारागंडा बेसिन, पेचोरा बेसिन, चीन व भारत के कुछ क्षेत्र, जापान के अधिकांश क्षेत्र आदि है अतः आज के विश्व में कोयले की माँग इसकी आपूर्ति से कहीं अधिक है और कोयले की ऊर्जा का संकट पैदा हो गया है । आशंका है कि यदि इसी गति से कोयले का प्रयोग बढता गया तो विश्व के समस्त कोयला भण्डार आने वाले सौ वर्षों में समाप्त हो जाएँगे ।
- पेट्रोलियम का उपयोग तब शुरू हुआ जब 1859 ई. में संयुक्त राज्य अमेरिका के टिटस्विले में तेल का उत्पादन शुरू हुआ । शीघ्र ही अप्लेशियन तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के अन्य क्षेत्रों में तेल का उत्पादन शुरू हो गया और ऊर्जा के स्रोत में तेल का महत्व बढ गया । अब इस देश के बहुत से तेल भण्डार प्रयोग किए जा चुके है । 20वीं शताब्दी के प्रारम्भिक चरणों में मध्य पूर्व में तेल के भण्डारों की खोज हुई और प्रथम विश्व युद्ध के बाद यह विश्व का सबसे महत्वपूर्ण उत्पादक क्षेत्र बन गया ।
- अरब राष्ट्रों के हाथ में खनिज तेल एक आश्चर्यजनक भू-राजनीतिक हथियार है, जिसके द्वारा वे शक्ति प्रदर्शन करते है । ये देश स्वेच्छा से तेल के उत्पादन में कमी या वृद्धि करके तेल की कीमतें निश्चित करने है और विश्व की अर्थव्यवस्था को प्रभावित करते है । तेल की आपूर्ति के सन्दर्भ में संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे शक्तिशाली देश को भी इन देशों के आगे झुकना पडता है । ये देश किसी भी देश को तेल बेचना बन्द करके उस देश के लिए ऊर्जा संकट पैदा कर सकते है ।
- वर्ष 1973 में पेट्रोलियम निर्यातक देशों के संगठन ने तेल का मूल्य 51.5 प्रति बैरल से बढाकर 57 प्रति बैरल कर दिया । इसका कारण यह दिया कि अन्य वस्तुओं के दाम बढ गए है और सीमित भण्डारों के समाप्त होने तक ये देश अधिकतम लाभ कमाना चाहते है । इससे विश्व के अनेक देशों में ऊर्जा संकट पैदा हो गया और भारत जैसे विकासशील देशों को कुल आयात का तीन-चौथाई धन तेल के आयात पर खर्च करना पडा ।

- वर्ष 1981 में तेल की कीमतें 20 प्रति बैरल थीं, वर्ष परन्तु उससे पहले ये 34 तक पहुँच चुकी थीं 1991 में फिर तेल की कीमतें बढ गईं और जुलाई, 2008 में तेल की कीमतें अपनी चरम सीमा 147 प्रति बैरल तक पहुँच गईं । इससे विश्व भर में ऊर्जा संकट जनित आर्थिक संकट पैदा हो गया, क्योंकि बहुत से विकासशील देशों के पास महँगा तेल खरीदने के लिए पर्याप्त विदेशी मुद्रा नहीं थी । इससे तेल की त्रिकी में कमी आ गई । उत्पादक देशों के पास बिकी योग्य तेल के भण्डार जमा हो गए और तेल की कीमतें 2009 में 37 प्रति बैरल तक गिर गई ।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि विश्व में तेल की आपूर्ति तथा उसकी कीमतों में परिवर्तन आने से ऊर्जा संकट प्रायः पैदा होता रहता है । वैसे भी ऊर्जा की बढती माँग तथा सीमित आपूर्ति के कारण विश्व में ऊर्जा संकट भयानक रूप धारण कर गया है । अनुमान है कि विश्व में ऊर्जा की माँग तथा आपूर्ति में लगभग 15: का अन्तर रहता है । कुछ देशों का माँग इतनी अधिक हो गई है कि वहाँ पर उपलब्ध ऊर्जा संसाधन माँग का आधा भाग भी पूरा नहीं कर पाते । भारत में ऊर्जा की माँग इसकी आपूर्ति से लगभग 14% अधिक है ।

विश्व के विकसित एवं विकासशील देशों में ऊर्जा संकट

विश्व स्तर पर प्रतिवर्ष ऊर्जा की खपत में लगभग तीन गुना वृद्धि के फलस्वरूप ऊर्जा संकट आज के युग की वास्तविकता है । संसारभर में ऊर्जा के गैर परम्परागत साधनों को विकसित राष्ट्र, जैसे–जापान, अमेरिका, रूस, इंग्लैण्ड, फ्रांस एवं इजरायल आदि विकल्प के रूप में द्रुतगति से अपना रहे हैं । ऊर्जा विकल्प की यह विश्वव्यापी चर्चा एवं उपायोजन निरर्थक नहीं है ।

ऊर्जा के वर्तमान साधन सीमित है । विश्व में 1 करोड 3å लाख 65 कोयला भण्डार है, गेस भण्डार तो केवल 41 हजार मेगाटन है । भार दशकों ज्यादा ये संसाधन हमारा साथ देने वाले नही है, अत्यन् पर्यावरण को बिगाडने वाले है और दूर–दराज के क्षेत्रों में उपलब्ध भी नहीं है । अतरू घरेलू ईथन हेतु गैर–पारम्परिक साधनों का उपयोग ही एकमात्र विकल्प सिद्ध हो सकता है । वर्ष 1973 में ऊर्जा उपलब्धता की दृष्टि बहुत गहरा संकट तब उत्पन्न हो गया जब अरब देशों में पेट्रोल का राष्ट्रीयकरण कर लिया गया पेट्रोल निर्यातक देशों के संगठन OPEC (Organisation of the Petroleum Exporting Countries) ने पेट्रोल की कीमतें बढाने का निर्णय किया ।

विकासशील एवं विकसित देशों में ऊर्जा संकट की स्थिति

ऊर्जा संकट का सबसे अधिक प्रभाव उन विकसित देशों पर ही पढा पेट्रोल का आयात करते है । प्रत्यक्षतः अब इनकी विदेशी मुद्रा जो प्रायः अन्तर्राष्ट्रीय स्रोतों से भारी कर्ज लेने से उपलब्ध होती है, का अधिकांश पेट्रोल की कीमत चुकाने में ही लग जाता है । उदाहरणार्थ, भारत में वर्ष 1976–80 में कुल आयात का लगभग एक–तिहाई केवल पेट्रोलियम आयात पर खर्च

इसके अतिरिक्त विकासशील देश जिन निर्मित वस्तुओं का (उर्वरक, रासायनिक पदार्थ, मशीनें आदि) विकसित देशों से आयात करते है वे भी उन्हें पहले की अपेक्षा महँगी पडती है, क्योंकि निर्यातक देशों में ऊर्जा को बढती कीमत के चलते इनकी लागत बढ गई । दूसरी ओर विकसित देशो प्रधानतया निर्मित वस्तुओं का आयात करते है, ऊर्जा की बढी हुई कीमन को अपनी वस्तुओं की कीमत में वृद्धि करके आयातक देशों जिनमें पेट्रोल निर्यातक देश शामिल है से वसूल लेते है ।

इस प्रकार ऊर्जा संकट वस्तुतः ऊर्जा के पारम्परिक स्रोतों की कीमत में अत्यधिक वृद्धि की देन है ।

विकासशील देशों में अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है । इन क्षेत्रों में व्यापारिक ऊर्जा की अपेक्षा जैविक ऊर्जा, विशेषकर लकडी का ईंधन हेतु अधिक उपयोग होता रहा है । उदाहरणार्थ अफ्रीका में कुल ऊर्जा उपभोग का 59% केवल जलावन की लकडी से प्राप्त होता है । नेपाल में 86: ऊर्जा जलावन की लकडी से सुलभ होती है ।

बढती जनसंख्या एवं अन्य कारणों से लकडी की माँग वृद्धि के कारण इन देशों में बडे पैमाने पर वनों का कटाव हुआ है, जिससे वह ऊर्जा स्रोत भी अति क्षीण हो गया है ।

ऊर्जा संकट की स्थिति विकसित एवं विकासशील देशों की संयुक्त समस्या है, लेकिन विकसित देशों का ऊर्जा के अन्य वैकल्पिक स्रोतों के विषय में खोज एवं तकनीकी विशेषता ने ऊर्जा संकट को उतना भयावह नहा बनाया जितना कि यह विकासशील देशों में अपने विध्वंसक रूप में विद्यमान है ।

कृषि भूगोल

(Agriculture Geography)

कृषि भूगोल, भूगोल की वह शाखा है, जो कृषि तत्वों–खेती तथा फसल की पद्धतियों के स्थानिक वितरण के बारे में अध्ययन करती है । कृषि का मुख्य उद्देश्य मानव के लिए भोजन और कच्चे माल का उत्पादन करना है

कृषि (Agriculture)

कृषि एक अत्यन्त ही व्यापक शब्द है, जिसके अन्तर्गत मानव साधारण से लेकर अत्यन्त जटिल क्रियाओं द्वारा भूमि का उपयोग अपने लाभ के लिए भूमि से खाद्यान्न और कच्चा माल प्राप्त करने के लिए करता है । इन सामान्य क्रियाओं के अतिरिक्त कृषि के अन्तर्गत फलोत्पादन, वृक्षारोपण, घास एवं दाल वाली फसलें पैदा करना, पशुपालन एवं मछली पकडना भी आता है । कृषि क्रिया इस बात का उदाहरण है कि किस प्रकार मानव अपना वातावरण अपने अनुकूल बनाता है । कृषि का मुख्य उद्देश्य मानव के लिए भोजन और कच्चे माल का उत्पादन करना है ।

कृषि के प्रकार

कृषि को मुख्य रूप से जल प्राप्त के आधार पर, भूमि की उपलब्ध मात्रा के आधार पर और कृषि उत्पादों के आधार पर वर्गीकृत किया गया है, जिनका वर्णन निम्नलिखित है

जल प्राप्ति के आधार पर कृषि के प्रकार

जल प्राप्ति के आधार पर कृषि के प्रकार निम्नलिखित हैं–

तर खेती यह विशेषतः काँप मिट्टी के उन भागों में की जाती है जहाँ साधारणतया वर्षा 200 सेमी से ऊपर होती है । भारत में मध्य और पूर्वी हिमालय प्रदेश, दक्षिणी बंगाल, मालाबार तट आदि में बिना सिंचाई के ही खेती द्वारा गन्ना, चावल आदि उपजें उत्पन्न की जाती है । विश्व के अन्य देशों में आर्द्र खेती मुख्यतः उत्तर पश्चिमी यूरोप, उत्तरी–पूर्वी दक्षिण अमेरिका, इण्डोनेशिया, श्रीलंका तथा मलेशिया आदि दक्षिण–पूर्वी एशिया के देशों में होती है । ऐसी खेती द्वारा पैदा किये जाने वाले पदार्थ सस्ते होते है, क्योंकि फसलों को जल देने की आवश्यकता नहीं रहती ।

आर्द्र खेती इसके अन्तर्गत विश्व की कृषि योग्य भूमि का सबसे अधिक भाग है । यूरोप, अमेरिका और एशिया के विस्तृत कृषि भागों में इस प्रकार की खेती होती है । भारत में यह विशेषकर काँप मिटटी और काली सिंचाई द्वारा खेती यह विश्व के मानसूनी अथवा अर्द्ध शुष्क प्रदेशों में की जाती है, 50 से 100 सेमी तक वर्षा होती है । इन प्रदेशों में वर्षा की मात्रा अतिरिक्त कम अथवा मौसम विशेष में ही होती है और जहाँ वर्षभर ही तापमान कृषि उत्पादन के उपयुक्त रहता है । ऐसे भाग भारत में गंगा का पश्चिमी मैदान, उत्तरी तमिलनाडु और दक्षिण भारत की नदियों के डेल्टा प्रदेशों में है । विश्व के अन्य देशों (यथा– मित्र, चीन, इराक, संयुक्त राज्य अमरीका, मेक्सिको और ऑस्ट्रेलिया) में भी सिंचाई द्वारा खेती की जाती है । सिचाई के सहारे गेहूँ, चावल, गन्ना, कपास आदि फसलें पैदा की जाती है ।

सूखी खेती विश्व के जिन भागों में 50 सेमी से भी कम वर्षा होती है । वहाँ सूखी खेती की प्रणाली अपनाई जाती है । इस खेती के अन्तर्गत भूमि की गहरी जुताई (19 से 25 सेमी तक) की जाती है, जिसके कारण भूमि पर गिरा हुआ जल गिरे उसी में समा जाए । प्रातःकाल इस जोती हुई भूमि को छोटे-छोटे पत्थरों से ढक दिया जाता है अथवा पटेला फेर दिया जाता है, जिसमें सूर्य की गर्मी के कारण भूमि के जल की वाष्पीकरण क्रिया न हो । पुनः पत्थरों को हटा दिया जाता है जिससे भूमि को ओस का लाभ मिल सके । इस क्रिया को निरन्तर करने से भूमि में इतनी नमी प्राप्त हो जाती है कि उसमें खेती की जा सके । सूखी खेती की जाने वाली भूमि साधारणतः बलुही अथवा चिकनी दोमट मिट्टी होती है । वर्षा न होने से इसकी उर्वरा शक्ति नष्ट नहीं हो पाती । सूखी खेती के अन्तर्गत कृषि में अधिक व्यय करना पडता है । अतः उन्हीं फसलों का उत्पादन किया जाता है, जो शुष्कता सहन करने वाली हों या जिनमें कीडे या बीमारियाँ न लग सके अथवा जिनका उत्पादन आर्थिक रूप से लाभदायक होता है । गेहूँ, जो, राई, सोरगम, फलियाँ या चारा आदि ही अधिक पैदा किया जाता है । सूखी खेती में मुख्य क्षेत्र संयुक्त राज्य अमेरिका, (जहाँ ग्रेट बेसिन, कोलम्बिया नदी और स्नेक नदी वेसिन प्रमुख हैं) ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, पश्चिमी एशिया, दक्षिणी अफ्रीका और भारत (पश्चिमी उत्तर प्रदेश, राजस्थान और गुजरात) हैं ।

भूमि की उपलब्ध मात्रा के अनुसार कृषि के प्रकार भूमि की उपलब्ध मात्रा के अनुसार कृषि के प्रकार निम्नलिखित है ।

गहरी खेती जिन देशों में जनसंख्या हानि होती है, किन्तु कृषि के लिए भूमि का अभाव होता है, उनमें इस प्रकार की खेती की जाती है । अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए भूमि को अनेकों बार जोता जाता है, उत्तम बीजों और खाद का प्रयोग अधिक मात्रा में और उचित समय पर किया जाता है, निश्चित रूप से सिंचाई की व्यवस्था की जाती है, फसलों को हेर-फेर के साथ बोया जाता है और अधिक श्रमिकों का उपयोग किया जाता है । चूँकि घने बसे देशों में कृषि के लिए नई भूमि का मिलान सीमित होता है । अतः गहरी खेती द्वारा ही उत्पादन बढाया जाता है । चीन, जापान, ईरान, ग्रेट ब्रिटेन नीदरलैण्ड, जर्मनी और बेल्जियम आदि देशों में गहरी खेती की जाती है ।

विस्तृत खेती इस प्रकार की खेती उन देशों में की जाती है जहाँ उपलब्ध भूमि की मात्रा जनसंख्या के अनुपात में अधिक होती है । चूँकि कार्य करने के लिए श्रमिकों का अभाव होता है । अतः सम्पूर्ण कार्य यन्त्रों द्वारा ही क्रिया जाता है । संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, अर्जेण्टीना, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा और ब्राजील में खेती का यही रूप पाया जाता है ।

कृषि उत्पादों के आधार पर कृषि के प्रकार कृषि उत्पादों के आधार पर कृषि के प्रकार निम्नलिखित हैं -

बागाती कृषि उष्ण कटिबन्धीय देशों में उपयुक्त जलवायु विशेष प्रकार की बागानी कृषि की जाती है, जिसके लिए अधिक पूंजी कारण विशिष्ट श्रम एवं देख-रेख की आवश्यकता पडती है । पूँजी और प्रबन्ध यूरोपीय देशों से तथा श्रम स्थानीय निवासियों से प्राप्त कर वनों को साफ करके की गई भूमि में गन्ना, चाय, रबड, कहवा तथा कोको जैसी फसले पैदा की जाती है । दक्षिणी पूर्वी एशिया, मध्य एवं दक्षिण अफ्रीकी देश, ब्राजील, पूर्वी ऑस्ट्रेलिया, फिजी, मॉरीशस आदि द्वीपों में इस प्रकार की कृषि की जाती है ।

फलों एवं सब्जियों की कृषि नगरों के समीपवर्ती क्षेत्रों में स्थानीय मांग को पूरा करने के लिए फल एवं सब्जियों का उत्पादन बडे पैमाने पर किया जाता है । बाजारों की समीपता, यातायात की सुविधा के आधार पर ही प्रकार की कृषि की जाती है । संयुक्त राज्य की कैलीफोर्निया की घाटी, फ्लोरिडा, इस अटलाण्टिक तटीय राज्यों और पश्चिमी यूरोपीय देशों में नगरों के सम अनेक प्रकार के फल एवं तरकारियाँ बडे पैमाने पर पैदा किए जाते है ।

कृषि के अन्य प्रकार कृषि के अन्य प्रकार निम्नलिखित हैं–

झूमिंग प्रणाली द्वारा खेती इस प्रणाली के द्वारा खेती करने में वनों को जलाकर साफ कर लेते हैं । फिर वर्षा के बाद उस राखयुक्त भूमि में मोटे अनाज बिखेरकर बो देते हैं । इस प्रकार के खेतों से दो या तीन वर्षों तक फसलें प्राप्त की जा सकती हैं, उसके बाद फिर नई भूमि साफ कर ली जाती है । इस प्रकार की खेती आदिवासियों द्वारा अफ्रीका, दक्षिणी अमेरिका और दक्षिणी पूर्वी एशियाई देशों में की जाती है । विश्व के विभिन्न देशों में स्थानान्तरी कृषि के अलग-अलग नाम हैं । इसे फिलिपिन्स में चेनगिन, वियतनाम में डे, ब्राजील में रोका, मेक्सिको व मध्य अमेरिका में मिल्पा, कांगो प्रजातान्त्रिक गणराज्य (अफ्रीका) में मसोले, यूरोपीय देशों में बुश फैलो, ग्वाटेमाला व जाम्बिया में मिल्पा, श्रीलंका में चेना, सूडान में नमासू, म्यांमार में तुंग्था, मलेशिया में लेडांग, इण्डोनेशिया में हुम्मा, थाइलैण्ड में तमराई, भारत के असम में झूम, आन्ध्र प्रदेश व ओडिशा में पोडू, केरल में ओनम, मध्य प्रदेश व छत्तीसगढ में वेवार, माशा व पेण्डा तथा राजस्थान में वालरा तथा चिमाता कहते हैं ।

सीढी के आकार की खेती इस प्रकार की खेती विशेषकर पहाडी ढालों पर की जाती है । पहाडी निवासी ढालों को सीढियों के आकार में काटकर छोटे-छोटे खेत बना लेते है और बडे परिश्रम के साथ आलू, मिर्च, सब्जियाँ, चावल तथा चाय पैदा कर लेते हैं । इस प्रकार की खेती इण्डोनेशिया, श्रीलंका, उत्तर पूर्वी भारत, हिमालय की ढालों पर, जापान और थाइलैण्ड में की जाती है । चीन,

मिश्रित खेती इस खेती के अन्तर्गत भूमि पर न केवल फसलें पैदा की जाती हैं वरन् पशु पाले जाते हैं । कुछ फसलें पशुओं के लिए और अधिकांश मनुष्यों के लिए खाद्यान्नों के रूप में पैदा की जाती हैं । पशुओं का मल-मूत्र खेतों की उत्पादक शक्ति को बढा देता है । खेती के साथ- साथ चौपाये, भेड-बकरियाँ तथा रेशम के कीडे और मुर्गियाँ आदि पाली जाती हैं । इस प्रकार की खेती प्रायः सभी अधिक जनसंख्या

विश्व की कृषि पद्धतियाँ

कृषि के विभिन्न प्रकारों के अनुसार पृथ्वी के धरातल को अनेक भागों बाँटा जा सकता है; जैसे, वे प्रदेश, जिनमें मुख्य रूप से केवल पशुपालन किया जाता है । वे प्रदेश, जिनमें खाद्यान्न उत्पन्न होता है और वे प्रदेश जिनमें पशुपालन और कृषि उत्पादन पर समान रूप से बल दिया जाता है । इन भागों को उनके उप-विभागों में बाँटा जा सकता है । इन उप विभागों में श्रमिकों की उपलब्धि पूँजी तथा व्यवस्था की प्राप्ति, भूमि की किस्म एवं उसकी उपलब्धि आदि के आधार पर निम्नलिखित आठ कृषि पद्धतियाँ देखने को मिलती है

- प्राचीन भरण-पोषण वाली खेती
- गहन भरन-पोषण वाली खेती
- पौध वाली खेती
- भूमध्य सागरीय खेती
- व्यापारिक अन्न उत्पादक खेती व्यापारिक फसल एवं पशुपालन
- व्यापारिक पशुपालन
- व्यापारिक बागवानी एवं फलोत्पादन खेती

इन आठ प्रकारों में से प्रथम दो प्रकार विशेष रूप से अविकसित देशों की विशेषता है और अन्तिम छ तकनीकी विकसित देशों की है । यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि पौध वाली खेती यद्यपि विकसित देशों में की जाती है, किन्तु इसके लिए व्यवस्था, पूँजी तथा यन्त्र आदि सभी विकसित देशों से प्राप्त होते हैं ।

भूमि क्षमता (Land Capability) भूमि क्षमता से अभिप्राय पृथ्वी के किसी भू-भाग का मानव द्वारा उपयोग से है । पृथ्वी पर मानव विभिन्न क्रियाकलाप करता है । इन क्रियाकलापों हेतु मानव द्वारा किए गए धरातल के उपयोग को भूमि उपयोग की संज्ञा दी जाती है ।

भूमि क्षमता का वर्गीकरण

भूमि क्षमता वर्गीकरण पृथ्वी के किसी क्षेत्र का मनुष्य द्वारा उपयोग को सूचित करता है । सामान्यतः भूमि के हिस्से पर होने वाले आर्थिक क्रिया कलाप को सूचित करते हुए उसे वन भूमि, कृषि भूमि, चालू परती, चरागाह इत्यादि वर्गों में बाँटा जाता है । यदि इसे तकनीकी रूप में परिभाषित किया जाए, तो भूमि क्षमता वर्गीकरण से अभिप्राय भूमि उपयोग को किसी विशिष्ट वृहत स्तर पर ग्रेट ब्रिटेन में प्रथम भूमि उपयोग सर्वेक्षण वर्ष 1930 में डडले स्टाम्प महोदय द्वारा किया गया था । भारत में भूमि क्षमता से सम्बन्धित मामले भारत सरकार के ग्रामीण विकास मन्त्रालय के भूमि संसाधन विभाग के अन्तर्गत आते हैं । वहीं राष्ट्रीय स्तर पर भूमि उपयोग से सम्बन्धित सर्वेक्षणों का कार्य नागपुर स्थित राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो नामक संस्था करती है । इस संस्था द्वारा भारत के विभिन्न हिस्सों के भूमि उपयोग मानचित्र प्रकाशित किए जाते हैं ।

भू आवरण प्रकार की रचना, परिवर्तन अथवा संरक्षण हेतु मानव द्वारा उस पर किए जाने वाले क्रियाकलापों के रूप में परिभाषित किया गया है ।

भूमि उपयोग और इसमें परिवर्तन का किसी क्षेत्र के पर्यावरण और पारिस्थितिकी पर अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है । प्राकृतिक संसाधन संरक्षण से जुडे मुद्दों पर भूमि उपयोग संरक्षण से जुडे बिन्दु है - मृदा अपरदन एवं संरक्षण, मृदा गुणवत्ता संवर्धन, जल गुणवत्ता एवं उपलब्धता, वनस्पति संरक्षण तथा वन्यजीव आवास इत्यादि ।

भूमि क्षमता के वर्गीकरण का आधार

भूमि क्षमता के वर्गीकरण का आधार भूमि के निश्चित उपयोग से है । भूमि का प्रयोग कृषि क्षेत्र, अकृष्य कार्यो, वनों, उद्यानों, आवास क्षेत्रों, गृह, सडक, पार्क, प्रशासनिक व व्यापारिक संस्थाओं तथा विभिन्न नगरीय एवं ग्रामीण कार्यों में होता है । विश्व के अनेक भागों में अलग-अलग स्थानों पर भूमि का अलग-अलग तरीके से प्रयोग होता है, इसी को भूमि उपयोग कहते है । कृषि क्षेत्रों में भूमि के विविध प्रयोगों का अध्ययन कृषि भूमि उपयोग के रूप में किया जाता है; जैसे अकृषित भूमि, कृष्य बंजर भूमि, कृषित भूमि सिंचित भूमि, असिंचित भूमि, एक फसली भूमि, दो फसली भूमि तथा बहुसंख्यीय भूमि आदि इसके अन्तर्गत कृषि भूमि क्षमता एवं उत्पादकता का भी अध्ययन किया जाता है । कृषि भूमि उपयोग क्षमता ज्ञात करते समय भूमि उपयोग प्रतिरूप के विभिन्न पक्षों को आधार माना जाता है, जो भूमि को अकृषित, कृष्य बंजर, कृषित, सिंचित एवं बहुसंख्यीय भूमि आदि रूपों में प्रभावित करते है । भूमि उपयोग क्षमता एवं शस्य गहनता को समानवर्ती माना है, परन्तु वास्तव में भूमि उपयोग क्षमता एवं शस्य गहनता दोनों अलग-अलग पहलू है । संख्य गहनता भूमि उपयोग क्षमता के अध्ययन का एक महत्वपूर्ण पक्ष है, जबकि